भारत में शिक्षा का स्वरूप व आवश्यकता

शशांक मिश्र भारती

प्राचीन भारत में मनुष्य को संस्कारित करने वाला माध्यम शिक्षा कहा जाता था।जो कि संस्कृत के शिक्ष् धातु से बना है।जिसका अर्थ होता है–प्राप्त करना।शिक्षा मोक्ष का माध्यम भी थी। गुरुकुलों में रहकर छात्र ज्ञानार्जन करते थे।साथ ही गुरुकुलों के विविध क्रियाकलापों में हाथ बंटाते थे। गुरुकुल जहां शिक्षित, संस्कारित करते थे ,वहीं बालकों को विविध सामाजिक दायित्वों का अनुभव भी करवाते थे।इन गुरुकुलों व उनमें स्थित ऋषि–मुनियों का प्रभाव था, कि हमारी संस्कृति–सभ्यता चरमोत्कर्ष पर थी और राष्ट्र सोने की चिड़िया की उपमा पाता था।राष्ट्र पुरुषों के आगमन होते रहते थे भारत भूमि की महत्ता के कारण ही कहा जाता था कि देवता भी भारत में जन्म लेने को तरसते हैं।

धीरे–धीरे भूमण्डलीकरण, विदेशी आक्रमणों–उनके आगमन, पर संस्कृति–सभ्यताओं के प्रवेश, अन्धानुकरण ने हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को चौपट कर दिया और उनकी जगह आधुनिक शिक्षा पद्धति के शिक्षालयों के जन्म का आधार बनने लगा।कालान्तर में जो कि हमारे समक्ष भी आ गया।, जिसने न केवल शिक्षा बल्कि हमारे संस्कार, परम्पराओं, आदर्शों, नैतिक मूल्यों, रीति–रिवाजों को भी प्रभावित किया।परिणामतः राष्ट्र–पुरुषों, राष्ट्र प्रेमियों, नायकों का निर्माण न कर बाबुओं, नौकरी चाहने, करने वालों, धन–वैभव, पद–लोभी लोगों का जन्म हुआ।राष्ट्र की आवश्यकताएं मानों बाजारू व्यवस्था सी हो गईं।ब्रिटिश गुलामी से हम मुक्त हुए; लेकिन देश के सच्चे सपूतों की पहचान न कर सके और न ही हमारे द्वारा सभी को उचित सम्मान, गौरव पद दिये जा सका।जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्रवाद के चक्रव्यूह में हम फंसते चले गए।

आज तो केवल प्राचीन मान्यताओं का गला घोटने वाली, समाज को सम्पन्न और विपन्न, साधारण और असाधारण वर्ग में बांटने वाली शिक्षा–पद्धति के जगह–जगह पाश्चात्य शैली के विद्यालय खुले, जहां बालक को मशीनों सा ढाला जाने लगा, जिससे वह अपनी मातृभूमि, संस्कृति–सभ्यता, भाषा से दूर हो चला उसका शरीर मात्र स्वदेशी है शेष सब कुछ विदेशी होता जा रहा है।इसलिए वर्तमान समय में जो पाठ्यक्रम हमारे देश के अधिकांश शिक्षालयों में चल रहे है।वह देश के प्रचलन में राष्ट्र पुरुषों, सुयोग्य नागरिकों, सुधारकों आदि के निर्माण में समर्थ नहीं है; न ही उसमें हमारी प्राचीन मान्यताओं, संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं, साहित्य आदि की विश्वसनीय झलक देखने को मिलती है।हम अपने ही अनेक इतिहास नायकों को भूलते जा रहे हैं।राष्ट्रीय पर्व मात्र औपचारिक–अवकाश के दिन बनते जा रहे हैं।

जो कुछ पाठ्यक्रम चल भी रहे हैं उनसे अध्ययन करने व कराने वाले दोनों ही सन्तुष्ट नहीं हैं। शिक्षार्थी जहां ऊँचा पद ,प्रतिष्ठा, सरकारी सेवा दिला सकने वाली शिक्षा प्राप्त करना चाहता है, वहीं अधिकांश शिक्षक भी पाठ्यक्रम को पूर्ण करवा देना अपना दायित्व मान बैठे हैं।पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य छात्रोचित क्रिया कलापों में कोई रुचि नहीं रखते।छात्रों में सृजन क्षमताओं की घटती प्रवृत्ति के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी आजकल का शिक्षक ही हैं।विशेषकर कठिन विषय वाले अध्यापक तो बालकों के पूर्ण विकास से कोई सरोकार ही नहीं रखते।परिणामतः जहां समाज में शैक्षिक विषमतायें उत्पन्न हो रही हैं वहीं सामाजिक विषमताएं भी बढ़ रही हैं।आतंक, अलगाव, नगरीकरण, घृणा, द्वेष, स्वार्थलिप्सा, अन्याय ,अनीति का वातावरण बढ़ रहा है।आये दिन कोई न कोई समस्या उत्पन्न हो रही है। प्राचीनकाल के दैत्य–दानवों का रूप आजकल की इन समस्याओं ने ले लिया है।

आज शिक्षा के गिरते स्तर के कारण देश को श्रेष्ठ कवि, लेखक, शिक्षाविद्, अधिवक्ता, सुधारक, राष्ट्रोद्धारक, वैज्ञानिक, नेतृत्व कर्ता, खिलाड़ी आदि नहीं मिल पा रहे हैं।अनेक आयोगों, समितियों के गठन, सुझावों के बाद भी राष्ट्र का शैक्षणिक विकास नहीं हो पाया है जैसा कि होना चाहिए था।किसी भी देश के लिए आजादी के बाद 55 साल का समय बहुत होता है।लेकिन इन पचपन सालों के परिणामों को देखते हैं तो निराशा ही होती है।हमारा विकास विश्व परिदृश्य में ऊँट के मुंह में जीरा सा दिखता है।भले ही हमने इन सालों में अत्यल्प शिक्षाविदों, वैज्ञानिकों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकला सेवियों, खिलड़ियों, धर्माचार्यों आदि के रूप में प्रतिभाओं को पैदा किया है।लेकिन इनकी संख्या इस देश की प्राचीनता, महानता, विशालता और दानवाकार जनसंख्या को देखते हुए सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है।

हम जब इक्कीसवीं सदी के स्वपनलोक में विचरण कर रहे हैं।विश्व के विकसित देशों के साथ खड़े होने को तैयार हैं।प्रत्येक क्षेत्र में सुधारों को बल दे रहे हैं।अपनी मूलता की सर्वोत्तम निधि शिक्षा के स्वरूप को वर्तमान परिस्थितियों, आवश्यकताओं के अनुसार प्राचीनता से जोड़ते हुए बालकों तक पहुंचाना पड़ेगा।उनका मात्र मशीनीकरण, ज्ञार्नाजन, संगणकीकरण ही नहीं ;बल्कि उनके व्यक्तित्व का निर्माण भी करना होगा।उनके अन्दर इस देश के लिए, देश की संस्कृति, सभ्यता, भाषा–आदर्शों की रक्षा और सम्मान के लिए ज्योति जगानी पड़ेगी।

शिक्षा के ही स्वरूप से देश में व्याप्त वैमनस्यता, स्वार्थपरता, अन्धता, अलगाववादिता को दिल से दिल को जलाकर तोड़ना पड़ेगा।देश के वीर सेनानियों चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, बिस्मिल, सुखदेव, राजगुरू, सुभाष, तिलक, घोष जैसे अंगारे भी पैदा करने होंगे, जोकि देश की सीमाओं पर कुदृष्टि डालने वालों की आंखों को निकाल सकें।महिलाओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कित्तूर की रानी चेनम्मा, दुर्गाबती पैदा करनी होंगी।जोकि देश के अन्दर महिलाओं को उसके अबला होने के आवरण से बाहर लाकर अन्यों में प्राणशक्ति भर प्रेरणा दे सके।तभी हम व हमारा देश विश्व परिदृश्य में एक वट वृक्ष की भांति विशालतम रूप में खड़ा दिखलायी पड़ सकेगा। यथा–

शिक्षा ही बालक को संस्कारवान बनाती है,

उपजाती अस्तित्व शीर्ष नेतृत्व तक ले जाती है।

शिक्षा ही विद्या अमोघ अति प्रखरता भर देती –

अद्भुद्ता को दे पताका विश्व में लहराती है।।